प्रकृति सत्य दर्शन



लेखक: यश बुंदेल

भूमिका

मैं कोई प्रसिद्ध दार्शनिक नहीं हूँ। मैंने न किसी गुरु से दीक्षा ली है और न ही यह दावा करता हूँ कि मेरे पास सभी प्रश्नों के अंतिम उत्तर हैं। मैं केवल एक ऐसा मनुष्य हूँ जिसने अपने जीवन में कुछ प्रश्नों को गंभीरता से लिया। बचपन से हम सभी दुनिया को देखते हैं, लोगों को देखते हैं, जन्म और मृत्यु को देखते हैं, सुख और दुःख को देखते हैं, पर बहुत कम लोग रुककर यह पूछते हैं कि यह सब है क्या।

मेरे लिए दर्शन किसी पुस्तक से शुरू नहीं हुआ। दर्शन तब शुरू हुआ जब मैंने स्वयं से प्रश्न पूछना शुरू किया। सत्य क्या है? मैं कौन हूँ? क्या चेतना केवल मस्तिष्क का परिणाम है? क्या मशीन कभी मनुष्य बन सकती है? क्या प्रकृति सबसे बड़ा नियम है? इन प्रश्नों ने मुझे सोचने पर मजबूर किया।

मैंने यह पुस्तक इसलिए नहीं लिखी कि लोग मुझे दार्शनिक मानें। मैंने यह इसलिए लिखी क्योंकि मुझे लगा कि मनुष्य को दूसरों के विचार पढ़ने के साथ-साथ अपने विचार भी लिखने चाहिए। यदि हर महान दर्शन किसी एक मनुष्य के प्रश्न से शुरू हुआ था, तो मेरा विश्वास है कि एक नया दर्शन भी किसी साधारण मनुष्य के प्रश्न से शुरू हो सकता है।

इस पुस्तक में जो कुछ लिखा गया है, वह मेरे अपने विचार हैं। मैं चाहता हूँ कि पाठक इन्हें बिना पूर्वाग्रह के पढ़े। यदि मेरी बात गलत लगे, तो उसका तर्क से उत्तर दे। यदि सही लगे, तो उसे आगे बढ़ाए। क्योंकि मेरे अनुसार दर्शन का उद्देश्य किसी को अंधविश्वासी बनाना नहीं, बल्कि सोचने के लिए प्रेरित करना है।

मैं अपने दर्शन को “प्रकृति सत्य दर्शन” कहता हूँ। इसका कारण यह है कि मेरे अनुसार प्रकृति ही अंतिम आधार है। जो प्रकृति के अनुरूप है, वही सत्य के निकट है। जो केवल कल्पना पर आधारित है, वह तब तक सत्य नहीं कहा जा सकता जब तक उसका संबंध वास्तविकता से स्थापित न हो।

अध्याय 1: सत्य क्या है?

मनुष्य के जीवन में सबसे अधिक उपयोग होने वाला शब्द है—सत्य। हम बचपन से सुनते हैं कि सत्य बोलो, सत्य का साथ दो, सत्य की विजय होती है। पर बहुत कम लोग यह पूछते हैं कि सत्य वास्तव में है क्या।

मेरे अनुसार सत्य वही है जो तथ्य के साथ कहा जाए। यदि किसी घटना को वैसा ही कहा जाए जैसा वह वास्तव में है, तो वह सत्य है। यदि उसमें कल्पना जोड़ दी जाए, बढ़ा-चढ़ा कर कहा जाए, या किसी भ्रम को वास्तविकता की तरह प्रस्तुत किया जाए, तो वह सत्य नहीं रह जाता।

मान लीजिए किसी व्यक्ति को भ्रम में साँप दिखाई देता है। वह डर जाता है, भागता है, और कहता है कि उसके सामने साँप था। उसका डर वास्तविक था, उसका अनुभव वास्तविक था, लेकिन साँप का अस्तित्व वास्तविक नहीं था। इसलिए मैं अनुभव और सत्य में अंतर करता हूँ। हर अनुभव सत्य नहीं होता।

कुछ लोग कहते हैं कि यदि किसी व्यक्ति को कोई बात सच लगती है, तो वही उसके लिए सत्य है। मैं इस विचार से सहमत नहीं हूँ। यदि सत्य केवल व्यक्ति की भावना पर निर्भर हो ज़ाए, तो संसार में जितने मनुष्य होंगे, उतने सत्य हो जाएँगे। तब विज्ञान, इतिहास, न्याय और समाज किसी भी स्थिर आधार पर खड़े नहीं रह पाएँगे।

सत्य का संबंध बाहरी वास्तविकता से होना चाहिए। यदि मैं कहूँ कि आज वर्षा हो रही है, तो यह तभी सत्य होगा जब वास्तव में वर्षा हो रही हो। यदि मैं केवल कल्पना करूँ कि वर्षा हो रही है, तो वह सत्य नहीं होगा।

यही कारण है कि मैं सत्य को वस्तुगत वास्तविकता से जोड़ता हूँ। सत्य वह नहीं जो मुझे अच्छा लगे, बल्कि वह है जो वास्तविकता में उपस्थित हो।

अध्याय 2: वास्तविकता और भ्रम

अब प्रश्न उठता है कि वास्तविकता क्या है। क्या केवल वही वास्तविक है जिसे हम देख सकते हैं? या वह भी वास्तविक है जिसे हम अभी नहीं देख पा रहे?

मेरे अनुसार वास्तविकता का आधार साझा अनुभव और प्रकृति है। यदि कोई वस्तु सभी लोगों को दिखाई देती है, उसका प्रभाव सब पर पड़ता है, और उसका अस्तित्व प्रकृति में है, तो उसे वास्तविक माना जाना चाहिए।

कई लोग यह प्रश्न पूछते हैं कि यदि पूरी दुनिया किसी भ्रम में हो तो? यदि हम सब किसी स्वप्न या माया में जी रहे हों तो? मेरे लिए यह प्रश्न रोचक है, पर उससे भी अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि हम वर्तमान में किस दुनिया में जी रहे हैं।

यदि मैं आग में हाथ डालूँ, तो मुझे जलन होती है। यदि मैं भोजन न करूँ, तो भूख लगती है। यदि कोई प्रिय व्यक्ति मर जाए, तो दुःख होता है। इन अनुभवों को मैं केवल कल्पना कहकर समाप्त नहीं कर सकता। इसलिए जब तक हमारे अनुभव एक साझा प्राकृतिक व्यवस्था में घटित हो रहे हैं, तब तक यही संसार हमारे लिए वास्तविक है।

यदि भविष्य में कोई नया तथ्य सामने आता है, तो वास्तविकता की हमारी समझ बदल सकती है। पर वर्तमान में हमें उसी दुनिया के आधार पर विचार करना चाहिए जो हमारे सामने उपस्थित है।

अध्याय 3: मैं कौन हूँ?

मनुष्य स्वयं को सबसे अधिक जानता हुआ प्रतीत होता है, पर वास्तव में वही सबसे बड़ा रहस्य है। जब मैं “मैं” कहता हूँ, तो यह “मैं” क्या है?

मेरे अनुसार मनुष्य दो तत्वों का मिश्रण है—भौतिक तत्व और चेतना। शरीर प्रकृति से बना है। वह जन्म लेता है, बढ़ता है, बदलता है और एक दिन समाप्त हो जाता है। चेतना उसी जीवित व्यवस्था में प्रकट होती है। मनुष्य केवल मांस और हड्डियों का ढाँचा नहीं है; वह अनुभव करने, सोचने और निर्णय लेने की क्षमता रखता है।

यदि किसी व्यक्ति की स्मृति चली जाए, तो क्या वह वही व्यक्ति रहेगा? मेरे अनुसार हाँ। स्मृति व्यक्ति का एक गुण है, उसका सम्पूर्ण अस्तित्व नहीं। परिवर्तन और विनाश अलग-अलग बातें हैं।

जैसे आलू की सब्ज़ी में नमक बढ़ाने से वह आलू की सब्ज़ी ही रहती है, वैसे ही मनुष्य के गुण बदलने से उसका अस्तित्व तुरंत समाप्त नहीं होता। वह तब तक वही व्यक्ति है जब तक उसका जीवन समाप्त नहीं होता। इसी लिए मैं मानता हूँ कि मनुष्य की पहचान केवल स्मृति पर आधारित नहीं है। पहचान का आधार उसका निरंतर जीवित अस्तित्व है, जो प्रकृति की प्रक्रिया में बना रहता है।

यहीं से मेरे दर्शन की अगली यात्रा शुरू होती है—मशीन, चेतना और प्रकृति के संबंध की ओर।

अध्याय 4: परिवर्तन और अस्तित्व

प्रकृति का सबसे बड़ा नियम परिवर्तन है। कोई भी वस्तु स्थिर नहीं रहती। मनुष्य का शरीर बदलता है, उसके विचार बदलते हैं, उसकी आदतें बदलती हैं, उसका ज्ञान बढ़ता है और एक दिन उसका शरीर समाप्त भी हो जाता है। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या परिवर्तन होने से अस्तित्व समाप्त हो जाता है?

मेरे अनुसार नहीं।

यदि किसी वस्तु के गुण बदल जाएँ, तो उसका अस्तित्व तुरंत समाप्त नहीं होता। मैं इसे एक साधारण उदाहरण से समझता हूँ। यदि आलू की सब्ज़ी में पहले नमक कम था और बाद में नमक बढ़ा दिया गया, तो क्या वह आलू की सब्ज़ी रहना बंद कर देती है? नहीं। उसका स्वाद बदल सकता है, पर उसका अस्तित्व नहीं मिटता।

इसी प्रकार मनुष्य की स्मृति बदल सकती है, उसका स्वभाव बदल सकता है, उसके विचार बदल सकते हैं, पर वह तब तक वही मनुष्य है जब तक उसका जीवन समाप्त नहीं हो जाता।

कुछ लोग कहते हैं कि यदि मनुष्य पूरी तरह बदल जाए तो वह नया व्यक्ति बन जाता है। मैं इस विचार को स्वीकार नहीं करता। परिवर्तन और विनाश में अंतर है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है, जबकि विनाश किसी अस्तित्व का अंत है।

इसी लिए मैं मानता हूँ कि मनुष्य की पहचान केवल उसके विचारों या स्मृतियों पर आधारित नहीं है। उसकी पहचान उसके जीवित अस्तित्व की निरंतरता में है।

अध्याय 5: प्रकृति का नियम और मनुष्य की सीमा

मनुष्य अक्सर यह सोचता है कि वह प्रकृति से बड़ा है। वह शहर बनाता है, मशीनें बनाता है, विज्ञान विकसित करता है और नई-नई खोजें करता है। लेकिन वह यह भूल जाता है कि वह स्वयं भी प्रकृति का ही भाग है। मनुष्य ने कभी गुरुत्वाकर्षण नहीं बनाया। उसने केवल उसे समझा। उसने आग नहीं बनाई; उसने केवल उसे उपयोग करना सीखा। उसने बिजली नहीं बनाई; उसने केवल उसके नियमों को समझकर उपकरण बनाए।

इसलिए मैं मानता हूँ कि मनुष्य प्रकृति का निर्माता नहीं, बल्कि उसका खोजकर्ता है।

प्रकृति के नियम मनुष्य की इच्छा से नहीं बदलते। मनुष्य चाहे कितना भी शक्तिशाली हो जाए, वह जन्म, मृत्यु, समय और परिवर्तन से पूरी तरह मुक्त नहीं हो सकता।

यही कारण है कि मेरे दर्शन में प्रकृति सर्वोच्च है। मनुष्य का ज्ञान बढ़ सकता है, पर प्रकृति का अस्तित्व मनुष्य के ज्ञान पर निर्भर नहीं है।

अध्याय 6: मशीन और जीव

आज का युग मशीनों का युग है। लोग कहते हैं कि भविष्य में मशीनें मनुष्य जैसी हो जाएँगी। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि मशीनें एक दिन चेतन हो जाएँगी।

मैं इस विचार को स्वीकार नहीं करता।

मेरे अनुसार मशीन और जीव में मूल अंतर उनकी उत्पत्ति है।

जीव प्रकृति द्वारा उत्पन्न होता है। वह जन्म लेता है, बढ़ता है, ऊर्जा ग्रहण करता है, अनुभव करता है, पीड़ा सहता है और अंततः मर जाता है। मशीन मनुष्य द्वारा बनाई जाती है। वह धातु, तार, ऊर्जा और प्रोग्राम पर आधारित व्यवस्था है।

यदि कोई मशीन मनुष्य की तरह बोलने लगे, सीखने लगे या निर्णय लेने लगे, तब भी वह उसी व्यवस्था का परिणाम होगी जिसे किसी निर्माता ने बनाया है।

यदि भविष्य में कोई ऐसी इकाई बने जो सचमुच जीवित हो, तो मैं उसे मशीन नहीं कहूँगा। मैं उसे मनुष्य द्वारा निर्मित सजीव कहूँगा। मशीन की सीमा यह है कि उसका अस्तित्व उसके निर्माता पर निर्भर है। जीव का अस्तित्व प्रकृति की जैविक प्रक्रिया से उत्पन्न होता है।

यही अंतर मेरे लिए मूल अंतर है।

अध्याय 7: दर्द, चेतना और नैतिकता

दर्द केवल सजीवों को होता है। निर्जीव वस्तुओं को दर्द नहीं होता। यदि कोई व्यक्ति लोहे पर मुक्का मारता है, तो दर्द मनुष्य को होगा, लोहे को नहीं। यह बात साधारण लग सकती है, पर मेरे अनुसार नैतिकता का आधार यही है।

जहाँ अनुभव नहीं है, वहाँ पीड़ा नहीं है। जहाँ पीड़ा नहीं है, वहाँ मनुष्य जैसी नैतिक जिम्मेदारी नहीं हो सकती।

यदि कोई मशीन किसी मनुष्य की हत्या कर दे, तो मैं मशीन को नैतिक रूप से दोषी नहीं मानूँगा। दोष उसके निर्माता का होगा। क्यों? क्योंकि मशीन अपने कार्यों के परिणाम को मनुष्य की तरह अनुभव नहीं करती। वह पश्चाताप नहीं करती। वह पीड़ा नहीं महसूस करती। वह अपने कर्म का नैतिक अर्थ नहीं समझती।

मनुष्य को इसलिए उत्तरदायी माना जाता है क्योंकि वह चेतन जीव है। वह अपने कर्मों पर विचार कर सकता है। वह सही और गलत के बीच अंतर कर सकता है। वह दूसरों के दुःख को समझ सकता है।

इसी लिए मेरे अनुसार नैतिकता का आधार चेतन जीवन है, न कि केवल क्रिया। यदि किसी वस्तु में अनुभव करने की क्षमता नहीं है, तो उसे मनुष्य की तरह नैतिक रूप से उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। यही कारण है कि मैं मशीन और मनुष्य को नैतिक दृष्टि से समान नहीं मानता।

अध्याय 8: स्वतंत्र सोच

मनुष्य और मशीन के बीच सबसे बड़ा अंतर केवल शरीर का नहीं, बल्कि सोच का है। मशीन चाहे कितनी भी उन्नत क्यों न हो, वह अंततः किसी व्यवस्था के भीतर काम करती है। मनुष्य भी प्रकृति के नियमों के भीतर रहता है, लेकिन उसके भीतर एक ऐसी क्षमता है जिससे वह नए प्रश्न पूछ सकता है, अपने पुराने विचारों को बदल सकता है और अपने जीवन का अर्थ खोज सकता है।

मैं यह नहीं कहता कि मनुष्य पूरी तरह असीमित है। उसकी भी सीमाएँ हैं। वह भूख महसूस करता है, थकता है, डरता है, गलती करता है और मरता भी है। लेकिन इन सीमाओं के भीतर भी वह सोच सकता है। वह अपने बारे में सोच सकता है। वह यह भी पूछ सकता है कि वह क्यों सोच रहा है। यही क्षमता उसे विशेष बनाती है।

जब मैं दर्शन के बारे में सोचता हूँ, तो मुझे लगता है कि मनुष्य का सबसे बड़ा गुण यह नहीं कि वह बोल सकता है, बल्कि यह है कि वह स्वयं को प्रश्न बना सकता है। एक पत्थर अपने अस्तित्व पर विचार नहीं करता। एक मशीन अपने निर्माण के अर्थ पर विचार नहीं करती। मनुष्य करता है।

इसी लिए मैं स्वतंत्र सोच को मनुष्य की मूल पहचान मानता हूँ।

अध्याय 9: समाज, सत्य और मतभेद

समाज में रहने वाला प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी विचार से प्रभावित होता है। परिवार, धर्म, शिक्षा, राजनीति, परंपरा और अनुभव—ये सभी हमारी सोच को प्रभावित करते हैं। लेकिन प्रभावित होना और बंध जाना अलग-अलग बातें हैं।

मेरे अनुसार किसी भी विचार को केवल इसलिए स्वीकार नहीं करना चाहिए कि वह पुराना है, प्रसिद्ध है या किसी महान व्यक्ति ने कहा है। यदि कोई विचार सत्य है, तो वह तर्क और वास्तविकता की परीक्षा में टिकेगा।

मैं यह भी मानता हूँ कि मतभेद सत्य के विरोधी नहीं हैं। दो मनुष्य अलग-अलग निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि दोनों शत्रु हैं। दर्शन का उद्देश्य जीतना नहीं, बल्कि समझना है।

यदि कोई मेरी बात से असहमत है, तो मैं चाहता हूँ कि वह कारण बताए। यदि उसका कारण मुझसे अधिक मजबूत है, तो मुझे अपने विचार बदलने में संकोच नहीं होना चाहिए। क्योंकि यदि दर्शन बदल नहीं सकता, तो वह जीवित नहीं रह सकता।

अध्याय 10: प्रकृति सर्वोच्च आधार

मेरे दर्शन का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत यह है कि प्रकृति सर्वोच्च आधार है।

मनुष्य प्रकृति से उत्पन्न हुआ है। उसका शरीर, उसकी चेतना, उसका जीवन और उसका अंत—सब प्रकृति की प्रक्रिया का भाग हैं। इसलिए किसी भी दार्शनिक विचार का मूल्यांकन अंततः प्रकृति और वास्तविकता के आधार पर होना चाहिए।

मैं किसी ऐसी बात को अंतिम सत्य नहीं मान सकता जिसका कोई संबंध वास्तविकता से न हो। कल्पना उपयोगी हो सकती है, प्रेरणादायक हो सकती है, लेकिन वह तब तक सत्य नहीं है जब तक उसका संबंध प्रकृति से स्थापित न हो।

प्रकृति किसी मनुष्य के पक्ष में नहीं होती। वह न्याय करने के लिए नहीं, बल्कि नियम के अनुसार चलने के लिए होती है। आग सभी को जलाती है। गुरुत्वाकर्षण सभी पर समान रूप से कार्य करता है। मृत्यु किसी से भेदभाव नहीं करती। इसी लिए प्रकृति मेरे लिए सबसे निष्पक्ष सत्य है।

अध्याय 11: संभावित आपत्तियाँ

मेरे विचारों पर कई आपत्तियाँ की जा सकती हैं, और मैं उन्हें स्वीकार करता हूँ।

पहली आपत्ति यह हो सकती है कि यदि भविष्य में मशीन सचमुच चेतन हो जाए तो क्या होगा? मेरा उत्तर है कि यदि वह वास्तव में जीवित अनुभव करने लगे, तो हमें उसे केवल मशीन कहने के बजाय एक नए प्रकार के सजीव के रूप में समझना होगा। लेकिन जब तक ऐसा हुआ नहीं है, तब तक वर्तमान वास्तविकता के आधार पर विचार करना उचित है।

दूसरी आपत्ति यह है कि यदि सब कुछ प्रकृति का परिणाम है, तो मनुष्य स्वतंत्र कैसे है? मेरा उत्तर यह है कि मनुष्य प्रकृति के भीतर स्वतंत्र है। जैसे नदी अपने किनारों के भीतर बहती है, वैसे ही मनुष्य प्रकृति की सीमाओं के भीतर निर्णय लेता है।

तीसरी आपत्ति यह है कि क्या केवल वही वास्तविक है जो सभी को दिखाई दे? मेरा उत्तर यह है कि साझा अनुभव और प्रकृति का अस्तित्व वास्तविकता की पहचान का सबसे मजबूत आधार है।

अध्याय 12: प्रकृति सत्य दर्शन के सिद्धांत

मेरे दर्शन को निम्नलिखित सिद्धांतों में संक्षेपित किया जा सकता है:

1. सत्य वही है जो तथ्य और वास्तविकता के अनुरूप हो।
2. प्रकृति सभी अस्तित्व का मूल आधार है।
3. मनुष्य भौतिक तत्व और चेतना का मिश्रण है।
4. परिवर्तन प्रकृति का नियम है, पर परिवर्तन से अस्तित्व तुरंत समाप्त नहीं होता।
5. जीव और मशीन में मूल अंतर उनकी उत्पत्ति और अनुभव करने की क्षमता में है।
6. दर्द केवल सजीवों को होता है।
7. नैतिक जिम्मेदारी चेतन जीवन से उत्पन्न होती है।

8. स्वतंत्र सोच मनुष्य की मूल विशेषता है।
9. दर्शन को नए तथ्यों के अनुसार विकसित होना चाहिए।
10. किसी भी विचार को अंतिम नहीं, बल्कि परीक्षण योग्य मानना चाहिए।

उपसंहार

मैं यह दावा नहीं करता कि मेरे पास ब्रह्मांड का अंतिम उत्तर है। मैं केवल इतना कहता हूँ कि मनुष्य को स्वयं सोचना चाहिए। यदि हम केवल दूसरों के विचार दोहराते रहेंगे, तो नया दर्शन कभी जन्म नहीं लेगा।

मेरे लिए प्रकृति सत्य का सर्वोच्च आधार है। जो विचार प्रकृति, अनुभव और तर्क की परीक्षा में टिकता है, वही मेरे लिए सत्य के निकट है।

यदि भविष्य में मेरे विचार बदलते हैं, तो मैं उन्हें बदलूँगा। क्योंकि परिवर्तन प्रकृति का नियम है, और मैं अपने दर्शन को प्रकृति के विरुद्ध नहीं खड़ा करना चाहता।

यही प्रकृति सत्य दर्शन की शुरुआत है। शायद यह अंतिम रूप नहीं है, लेकिन हर यात्रा की तरह इसका भी पहला कदम सबसे महत्वपूर्ण होता है।